

सभ्यता के अंधेरो का प्रतिकार: आदिम का रहस्य

सन्दर्भ-किस्सागो (एल आब्लादोर)

अर्चना वर्मा



सम सामयिक जनतांत्रिक विश्व में सीमान्त अस्मिताओं और हाशिये पर धकेले गये समाजों के क्षोभ और असन्तोष को थामना अपरिहार्य है। अतः समता और सामाजिक न्याय की कार्यान्विति, या कम से कम कार्यान्विति का आभास ज़रूरी हो गया है। रंग, जाति, नस्ल, लिंग आदि पर आधारित भेदों और विषमताओं के विषय में संयुक्त राष्ट्र संगठन द्वारा जारी समतावादी नीतियां इस आभास को अन्तर्राष्ट्रीय बनाती हैं। इसके अन्तर्गत जिन जनसमूहों को गिना गया है उनमें सबसे अधिक उलझा हुआ सवाल आदिवासी जनजातियों को तथाकथित 'सभ्य संसार' की मुख्यधारा में शामिल करने का है। सवाल स्थानीय भी है ओर सार्वभौम भी। 'धरती' और मनुष्य के बीच सामन्जस्य, औद्योगिक संस्कृतियों और आज के तकनीकी विकास द्वारा पर्यावरण के साथ जबर्दस्ती, पर्यावरण के प्रति आदरभाव रखने अन्यथा नष्ट हो जाने के लिए बाध्य आदिवासी लोगों के ज्ञान के पुनर्मूल्यांकन की बातें भी ऐसे कुछ कारण हैं जो आदिवासी जनजातियों और उनकी जीवनपद्धतियों को फोकस में ले आई हैं। अधिकांशतः वे हाशिये के भी बाहर के समुदाय हैं। कहने को उनके पास 'जंगल, पहाड़, नदियां' हैं जो सभ्य संसार' के लिये फैलने को जगह और दुहने को प्राकृतिक सम्पदा की संभावना है इसलिये जिनको शामिल करने की नीति है उन्हीं को बेदखल करने की राजनीति भी है। इन जनजातियों के साथ दोस्ती हो या दुश्मनी, उसी एक लक्ष्यसंधान के अलग अलग पैच और पैतरे हैं।

सन 2010 का साहित्यिक नोबेल-पुरस्कार विजेता उपन्यास 'एल आब्लादोर' (हिन्दी रूपान्तर 'किस्सागो, रूपान्तरकार शम्पाशाह, राजकमल प्रकाशन, 2011 इस आलेख के उद्धरण इसी अनुवाद से लिये गये हैं।) इस दोधारी परस्परता को अनेकमुखी संभावनाओं में खोजता परखता है। हिन्दी के सामान्य पाठक के लिये सामान्यतः पुस्तक की दुर्लभता का पूरा अन्दाजा रखते हुए मैं इस अद्भुत उपन्यास के वैचारिक परिप्रेक्ष्यों और चिन्ताओं को रेखांकित करते हुए इसकी कहानी को, यथासंभव विस्तार से सुनाना चाहती हूँ।

नोबेल विजेता उपन्यासकार मारियो वार्गास ल्योसा स्वयं पेरूवासी हैं और इस परख-पड़ताल के लिये उन्होंने प्रसंगानुकूल अनेक जनजातियों का जिक्र करते हुए प्रमुख रूप से पेरूवियन जन-जाति माचिग्वेंगा को लिया है। अब यह जनजाति विनष्टप्राय है। जनजातीय जीवन का बहुत कुछ अंश सार्वभौम है इसलिये स्थानीय की परतों के भीतर एक सार्वभौम प्रासंगिकता सर्वत्र पढ़ी जा सकती है। प्रकृति के साथ अनुकूलता और 'सभ्यता' के साथ प्रतिकूलता का सम्बन्ध ऐसा ही एक जनजातीय सार्वभौम है जबकि उनसे सीखने को सभ्यता के लिये बहुत कुछ है। 'जनजातियों के भयावह शोषण के लिये उनके साथ सभ्यता का सम्पर्क रहता आया है।' 'पेड़ों की अन्धाधुन्ध कटाई, खाल और चमड़े के लिये होड़ में पशुओं का अनियंत्रित आखेट, डाइनामाइट से मछलियों का शिकार इत्यादि ऐसी बरबादी का कारण है जिसने अनेक प्रजातियों के साथ स्वयं इस जनजाति को भी लुप्त होने के कगार पर पहुंचा दिया है।'

कथा के घटना-विपन्न कलेवर में एक और यथार्थ और यथातथ्य के धरातल पर माचिग्वेगा जनजाति के विषय में नृतत्वशास्त्रीय शोधसामग्री, जनजाति के मानवाधिकार बनाम सरकार-गैरसरकारी-विदेशी विकासयोजनाएं, विकास के पक्ष-विपक्ष में राजनीतिक सामाजिक बहस-मुबाहिसा गूंथा गया है, और शायद ही बहस का कोई आयाम छूटा हो। दूसरी ओर तथ्य और यथार्थ का अतिक्रमण करते हुए प्रकृति के सघन सम्पर्क में जीती-जूझती जनजाति की ब्रह्माण्ड की परिकल्पनाएं, सृष्टिकथाएं, इतिहास के अनुभवों का रचनात्मक कायाकल्प, जीवन-पद्धति के निषेध-निर्देश, घटनाओं की तर्कातीत व्याख्याएं और यथार्थ की अपर्याप्तता का अहसास उतनी ही बल्कि कुछ अधिक ही 'बराबरी' के वज़न पर मौजूद है। कथा में उनकी मौजूदगी घटना को समतोल बनकर घटना-विरलता का उपचार करती है।

कहानी उत्तमपुरुष में सुनाई गयी है। कहानी सुनाने वाले पात्र के लिये सामान्यतः कथावाचक या किस्सागो एक उपयुक्त संज्ञा है लेकिन इस उपन्यास में वह पात्र भी कथावाचक है जिसकी कथा सुनाई जा रही है। कथावाचक की कथा कहने वाला भी है तो कथावाचक ही लेकिन चर्चा में भ्रम की गुंजाइश न छोड़ते हुए और उत्तमपुरुष-स्वर को ध्यान में रखते हुए यहां उसे आत्मवाची कहा जा रहा है।

उपन्यास में कुल मिलाकर आठ अध्याय हैं, और वृत्तान्त की दो साफ़ तौर पर अलग अलग धाराएं। बारी बारी से हमें उपन्यास का आत्मवाची प्रवक्ता माचिग्वेगा जनजाति के जीवन और उससे जुड़े शोध की तथ्यात्मक जानकारी देता हुआ और किस्सागो तथ्यात्मकता के तिरस्कार के साथ उनके जीवन के स्वास्थ्य-संस्कारों, रीति-रिवाजों, स्वप्नों और दुःस्वप्नों, शिकार और जुगाड़, चिरैवेति-प्रधान ज़िन्दगी का काव्यात्मक वृत्तान्त सुनाता मिलता है।

कथानक का गठन गुमशुदा की तलाश में नमूने और कुछ कुछ जासूसी रहस्योद्घाटन की तर्ज पर किया गया है जो सिंहावलोकन में अतीत और फ़्लोरेस में पेरू के आदिवासी प्रदेशों के बारे में एक प्रदर्शनी में एक किस्सागो को घेरे बैठे तन्मय आदिवासी श्रोताओं का एक छायाचित्र देखता है जो संभवतः उसके खोये हुए मित्र साउल का है। चित्र उसको पिछले 23 वर्षों की स्मृतियात्रा पर ले जाता है। पूरी कहानी पीछे मुड़ कर देखते हुए, काल विस्तार में छिटके हुए भी पिछले अनुभवों को एक दूसरे से जोड़ कर परिप्रेक्ष्य में रखते और एक विकासक्रम में देख कर निष्कर्ष की संभावना को निचोड़ते हुए सुनाई गयी है।

उसे याद आता है अपने विलक्षण प्रतिभाशाली और संवेदनशील यहूदी मित्र साउल सूरतास का अतिशय कुरूप चेहरा जिसे एक बृहत्काय जन्मचिह्न ने दो रंगों में आधोआध बांट दिया था और जिसकी

वजह से उसे निकट और प्रिय समझने वाले मित्रजन मास्करीता (मुखौटा) कहकर पुकारते थे और सड़क चलते अपरिचित तक दैत्य मानकर दुर्व्यवहार पर उतर आते थे; और अपने शोध के विषय माचिग्वेगा जनजाति के साथ 'जुनून' की हद तक उसका लगाव; और वे बहसों जो उपन्यास के आत्मवाची की साउल के साथ उसके इस जुनून को लेकर हुआ करती थीं। इसी साउल के लापता होने और पुनः पता पाने के क्रम के द्वारा जनजाति बनाम सभ्य संसार की बहस को उपन्यास का जामा पहनाया गया है। कथा के अवचेतन संसार में यह साउल के आत्मान्वेषण और एक अन्तरंग कायाकल्प की कहानी समायी हुई है। लेकिन उसके खुद को खोने और पाने की कहानी को सुनाने वाला उत्तमपुरुष वह स्वयं नहीं, आत्मवाची है। मुड़ कर देखते हुए आत्मवाची अपने किशोर से वयस्क होने के वर्षों की इस दोस्ती में उन लक्षणों की निशानदेही करना चाहता है जो तब साउल में होते इस परिवर्तन की पहचान करा सकते थे। कथा के आद्योपान्त में बदलता आत्मवाची भी है और वह माचिग्वेगा समुदाय भी जो दोनों के बीच का अनेकस्तरीय सम्बन्धसूत्र है। 23 वर्ष का कथाकाल 1953 से 1976 तक फैला हुआ है। यह साठ और सत्तर के दशक को समेटता वह काल है जिसके दौरान उपभोक्ता संस्कृति के विरोध में विश्वव्यापी छात्र आन्दोलन हुआ था और दुनिया भर में ऐसे मध्यमवर्गीय युवजन के उदाहरण थे जो मूल की ओर लौटने और जोखिम भरा जीवन बिताने की आकांक्षा से व्यवस्था के दायरे के बाहर चले गये थे। लेकिन साउल का बहिर्गमन किसी प्रतिक्रिया में नहीं, एक अस्तित्वगत आन्तरिक बदलाव का फल है। वह कहीं से पलायन का नहीं, एक निश्चित गन्तव्य की ओर पूर्ण प्रस्थान का पर्याय है। आत्मवाची इस कथा को सुनाता तो है पर समझता नहीं है।

साउल नृतत्व का विद्यार्थी है, माचिग्वेगा जनजाति पर शोध के दौरान वह उनके निकट सम्पर्क में आता है, उनकी परिस्थितियों, जीवनपद्धतियों, रीति-रिवाजों, संस्कारों, भाषा, इतिहास आदि से उत्तरोत्तर निकटतर परिचय पाता हुआ वह उनके साथ एकात्म होने की हद तक जा पहुंचता है। शुरुआती बहसों में आत्मवाची और साउल प्रतिपक्षी ध्रुवों की तरह सामने आते हैं।

‘ताज उतार कर उनके कदमों में रख देने को दिल करता .. साउल सूरतास

माचिग्वेगाओं के प्रति साउल के सम्मोहन का कारण उनकी 'प्रकृति के प्रति एक ऐसी दृष्टि' थी जो इन संस्कृतियों का एक अद्वितीय गुण' है, 'सभी आदिवासियों में तमाम भिन्नताओं के बावजूद समान रूप से मौजूद उस दुनिया की समझ जिसमें वे आद्योपान्त डूबे हुए थे, जो अनन्त काल से चले आ रहे रिवाजों, संस्कारों, निषेधों, भय, नित्यकर्मों

के गड़िन जाल के रूप में पीढ़ी-दर-पीढ़ी हस्तांतरित होती आई थी। उसी समझ से प्रकृति को बचाए रखने की चिन्ता उपजती है जिस पर वे जीवित रहने के लिये पूरी तरह से आश्रित हैं, जो सामान्य रूप से देखने पर इतनी विपुल जान पड़ने के बावजूद दर असल उनके जितनी ही वध्य है। वे आजतक बचे हुए हैं क्योंकि उन्होंने प्रकृति के प्रति बिना किसी हिंसा या विचलन के, जीवित रहने के लिये कम से कम ज़रूरत भर का लेकर अपनी आदतों रीति-रिवाजों को उसके साथ पूरी तरह से एकात्म कर लिया है, ताकि पलट कर वह उन्हें ही नष्ट न कर डाले। जिन तत्वों के बिना हम जैसे ही नष्ट हो जाएंगे जैसे बिना पानी के फूल सूख जाता है उन को आमूलचूल नष्ट करते हुए, जो आज हम सभ्य लोग कर रहे हैं, उससे बिल्कुल उलट।

साउल के पास मानवाधिकार और सामाजिक न्याय तर्क भी हैं जो उसकी पक्षधरता को निरी रूमानियत के ऊपर औचित्य देते हैं। उसे लगता है कि अमेसान घाटी में जो हो रहा है वह किसी अपराध से कम नहीं है। आखिर वे कहां जाएंगे? शताब्दियों से उन्हें अपनी ज़मीन से खदेड़ा जा रहा है; हर बार वे अन्दर-और-अन्दर धकेले जा रहे हैं..... इतनी विभीषिकाओं के बावजूद आज तक वे मिटे नहीं हैं।

लेकिन जाहिर है कि अब इस समय पीछे मुड़ के देखते हुए आत्मवाची के लिये उसकी भावना का आवेग और सघनता केवल तर्क 'से निपट जाने वाली चीज नहीं है। अब वह समझ सकता है कि'... ..उसके अन्तस में आमूलचूल रूपान्तरण की प्रक्रिया लगातार चल रही थी और अन्दर ही अन्दर उसने रहस्य रोमांच का जामा पहन लिया था, या शायद इसमें कहीं शहादत का ज़ब्बा भी झलकता था।'... किसी ने उसके मुंह से कभी यह नहीं जाना होगा कि उसके भीतर क्या घट रहा था या कि वह क्या करने का इरादा रखता था।'...सन्तों या पागलों के द्वारा लिया गया निर्णय किसी को बताया नहीं जाता। ऐसे निर्णय जो धीमी आंच पर, आत्मा की अंधेरी तहों में, तर्क से परे, भेदिया नज़रों से छिपाकर दूसरों की अनुमति के बगैर, सीझते पकते रहते हैं। जब तक कि वे परिपक्व नहीं हो जाते...विचार के प्रस्फुटन से लेकर कर्म में तब्दील होने तक एक सन्त या द्रष्टा या पागल अपने को अलग करता जाता है, दूसरों के अतिक्रमण से खुद को बचाता हुआ।'

वह वस्तुतः पूर्ण तादात्म्य की दिशा में उगती भावना थी तब जिसकी तर्कसंगत कार्य-कारणसम्मत व्याख्या के लिये उसने साउल के जन्मचिन्ह की विरूपता के मनोविज्ञान का सहारा लिया था और साउल को अपनी व्याख्या बता भी दी थी- 'पेरू की सामाजिक व्यवस्था में उन शापीरो, उआम्बिसा, अगुआरुना, जूगा, शाप्रा, काम्पा, मैश को (जनजातियां) लोगों की क्या स्थिति थी, वे उस समाज में किस चीज़ का प्रतिनिधित्व करते थे, यह वह किसी की भी तुलना में बेहतर जानता था: एक

दर्शनीय भयावहता, एक गड़बड़ जिसका लोग मखौल उड़ाते हैं या फिर उस पर दया करते हैं। पेरूवासियों की नजरों में साउल और वे आदिवासी दोनो ही सामाजिक विद्रूप थे। उसका जन्मचिह्न उनके भीतर जैसे ही हिकारत जगाता होगा जैसी कि वो अधनंगे, एक दूसरे के सिर से जुएं निकाल कर खाते और अबूझ भाषा में बतियाते हुए लोग जगाते थे...क्या वह अनजाने ही समाज के हाशिये पर खड़े उन लोगों के साथ खुद को एकाकार करता था क्योंकि उस धब्बे के कारण वह स्वयं को भी जितनी बार सड़क पर बाहर निकलता, हाशिये पर खड़ा पाता था।'

यह व्याख्या साउल का मनोविनोद करती है। शायद दुखती रग पर हंस देना ही न दुखने का तरीका है। वह स्वयं इसपर सदा हंसता ही है, एकबार के सिवा, जब वह माचिग्वेंगा समुदाय की न्यूनताओं पर टिप्पणी कर रहा होता है। उसे अपने पिता दोन सोलोमन सूरतास की व्याख्या ज्यादा सार्थक और मानवीय प्रतीत होती है, जिसके अनुसार साउल ने अपनी यहूदी अस्मिता को अमेसान इण्डियनों के साथ जोड़ लिया है जो उनकी ही तरह सदा से अल्पसंख्यक हैं और जिन्हें संसार में अपने भिन्न रीति रिवाजों और धर्म के लिये सदा प्रताड़ित किया जाता रहा है।

ल्योसा ने साउल के चरित्र के अभिप्राय को, उसकी विलक्षण संवेदनशीलता और तादात्म्य क्षमता को जन्मचिह्न की विरूपता और यहूदी अस्मिता के द्वारा कथात्मक स्वाभाविकता और मनोवैज्ञानिक संगति दी है- 'मान लो कि मेरे आधा यहूदी और आधा जानवर होने ने मुझे जंगल में रहने वाले उन आदिवासियों के प्रति तुम्हारे जैसे भयावह रूप से सामान्य व्यक्ति की तुलना में ज्यादा संवेदनशील बनाया है।'

लेकिन इस संवेदनशीलता का अर्थ विगलित भावुकता नहीं। आत्मवाची जब पूछता है, 'क्या तुम बहुविवाह, प्रकृतिपूजन, कपाल सिकोड़ने, भूत उतारने, तम्बाकू से इलाज करने वाले ओझा को उच्चतर संस्कृति का नमूना मानते हो?' तो वह अपने आवेगमय लगाव के बावजूद खुली आंखों देखता समझता स्वीकार करता है कि 'यदि यह प्रश्न बच्चों की मृत्युदर, औरतों की स्थिति, बहुविवाह या एक विवाह, हस्तशिल्प या उद्योग के बारे में पूछा जाए तो उच्चतर नहीं, निम्नतर शायद हां...यह मत समझो कि मैं उन्हें आदर्श की तरह देखता हूं . ..सदा चलते रहने वालों तथा उन जैसे आदिवासी समूहों में एकसी बहुत सी चीजें हैं जिन्हें जानकर तुम्हें धक्का लगेगा...' उदाहरण के तौर पर वह बताता है कि कई आदिवासी समूहों में दास प्रथा जीवित है, कई समाज अपने बुजुर्गों में बुढ़ापे या कमजोरी के लक्षण प्रकट होते ही उन्हें मरने के लिये छोड़ देते हैं कि उनकी आत्मा के लिये बुलावा आ गया है और उनकी नियति पूरी हो गयी है, सबसे क्रूर और कठोर है। 'अरावाकू आदिवासियों का परिवार को दूषणरहित रखने का आग्रह'

जिसके तहत जन्मना किसी गड़बड़ी या विकलांगता वाले बच्चे को जन्म लेते ही उसकी मां ही मार देती है, लंगड़े, लूले, अन्धे, कम या अधिक उंगलियों वाले, या कटे ऊपरी ओंठ वाले बच्चे या तो नदी में बहा दिये जाते हैं या गड्डे में जीवित गाड़ दिये जाते हैं। यही एक बार है जब वह अपने 'विकार' का जिक्र किंचित तरलता के साथ करता है.... मैं उनकी कसौटी पर खरा नहीं उतरता मित्र, उन्होंने मुझे खत्म कर दिया होता।'

लेकिन मामला उनके विश्वासों या अन्धविश्वासों का नहीं अपनी धरती पर बने रहने के अधिकार का है।

विकास खून बहाता हुआ आएका: आत्मवाची

साउल का यह रवैया क्या आदिम पवित्रता के मोह के नाम पर प्रतिगामी दृष्टि का प्रतिनिधि है? कथा के आरंभ में आत्मवाची का तर्क साउल के विपरीत विकास तथा व्यवस्था के पक्ष से सभ्य-संसार का स्टॉक तर्क है, कभी गंभीरतापूर्वक तो कभी केवल साउल को छेड़ने के लिये- 'उन मुट्टी भर आदिवासियों का जीवन पूर्ववत् चलता रहे इसकी खातिर बाकी पूरे पेरू को अमेसान क्षेत्र के विकास के प्रति उदासीन हो जाना चाहिये? क्या सोलह करोड़ पेरूवासियों को अपने देश की तीन चौथाई भू भाग के प्राकृतिक सम्पदा का मोह त्याग देना चाहिये, ताकि सत्तर अस्सी हजार इण्डियन इत्मीनान से धनुषबाण चलाते रह सकें, खोपड़ी सिकोड़, नाग और अजगर की पूजा कर सकें? क्या हमें उस क्षेत्र में खेती, पशुपालन की व्यावसायिक संवेदनाओं को कतई नहीं खंगालना चाहिये ताकि दुनिया भर के नृतत्वशास्त्री यहां आकर प्रत्यक्ष रूप से...उनके अनुष्ठानों का अध्ययन कर सकें, जिन्हें ये अजूबा लोग सदियों से लगातार बिना बदलाव, जीते चले आए हैं? नहीं मास्करिता, आखिर इस देश को आगे बढ़ना ही होगा। क्या मार्क्स ने यह नहीं कहा था कि विकास खून बहाता हुआ आएका? सोलह करोड़ पेरूवासियों के विकास और औद्योगीकरण की कीमत चुकाने के लिये उन कुछ हजार नंगे इंडियन लोगों को अपने बाल कटवाने पड़े, गुदने मिटाने पड़े... परसंस्कृत बनना पड़े तो ठीक है...'

लेकिन यह शुरुआत की बात है। अब पीछे मुड़ कर देखते हुए उसे लगता है कि शुरु के दिनों में उसके भीतर एक 'क्रान्तिकारी उत्साह' था और मार्क्स को पढ़ते हुए वह उत्पादन के सामाजिक सम्बंधों 'पर बकवास करता रहता था।' अब स्थिति और समझ दोनों ही बदले हुए हैं। वस्तुतः यह उपन्यास जितना साउल के, उतना ही आत्मवाची के भी बदलने, कुछ से कुछ और होने/ बनने की कहानी है। उसकी शुरुआत भी जन-जातियों के साथ निकटतर संपर्क से होती है।

इस संपर्क का मौका 1958 में भाषाविज्ञान के ग्रीष्मकालीन संस्थान द्वारा मेक्सिकन नृतत्वशास्त्रियों के लिये आयोजित एक दौरे में

जगह पाने से मिलता है। इस यात्रा में विश्वविद्यालय के नृतत्व विभाग के सदस्य और साउल के अध्यापक मातोस मार भी उसके साथ हैं। न्यूता साउल को भी मिला था लेकिन शामिल होने से इंकार कर दिया।

यात्रा के दौरान उन दोनों के बीच समस्या और समाधान के अनेक विकल्प बातचीत और बहस का विषय बनते हैं और हर बातचीत में यह अनुमान कहीं पृष्ठभूमि में सुगबुग करता रहता है कि साउल ने इस बारे में क्या कहा होता। आत्मवाची को महसूस होता है कि जनजातीय समूहों के पास पहुंचते ही जैसे 'हमारे सुदूर पूर्वजों का सरल आदिम प्रागैतिहासिक काल आंखों उपस्थित हो गया था। शिकारी, जंगली कन्दमूल एकत्रित करने वाले धनुषधारी, घुमन्तू, तर्क-वितर्क से दूर प्रकृतिपूजक, ओझा और झाड़फूंक में विश्वास करने वाले लोग। यह भी पेरू ही था। और तब मुझे इस दुनिया का सच्चा अहसास हुआ। सभ्य संसार से अनछुई पाषाणकालीन संस्कृतियां... आदिम इतिहास की पूर्वबेला... यात्रा ने मुझे स्वयं उन बातों को जानने का मौका दिया जिन्हें मैं बिना जाने सिर्फ अनुमान के सहारे... बहसों में बखाना करता था।अब मुझे पहले की तरह उसके विचार तर्कहीन और अवास्तविक नहीं जान पड़ते।'

इस बदलती हुई मनोभूमि के साथ आत्मवाची सीधे माचिग्वेगाओं के सम्पर्क में तो आता लेकिन अगुआरुना और उआम्बिसा नाम की जातियों से उसकी मुलाकात होती है और इस बात का थोड़ा जायजा भी मिलता है कि सभ्यता के सम्पर्क की क्या कीमत उन्हें चुकानी पड़ रही है। संस्थान के सहयोग से शिक्षा-मंत्रालय अगुआरुना जनजाति के बीच एक शिक्षण कार्यक्रम चला रहा था जिसके तहत उनका मुखिया शहर में आकर पढ़ना लिखना सीख गया था। कार्यक्रम का उद्देश्य गांव के प्रतिभाशाली युवकों को पढ़ना लिखना सिखाकर दुभाषिया अध्यापक बनाना था ताकि वे गांव वापस जाकर अन्य लोगों को भी साक्षर बना सकें। यह उद्देश्य तो पूरा नहीं हुआ लेकिन शहर में रह कर पढ़ते हुए मुखिया हुम को समझ में आ गया कि गोरे और मेस्तीसो (लातीनी अमेरिकी और स्पेनी भाषाओं में यूरोपीय तथा अमरीकी मूल के वासियों का नाम) लोग उनके साथ अदल-बदल प्रणाली से व्यापार करते हुए रबर और जानवरों की खाल के बदले में अपनी मर्जी या फितूर से जो कीमत चुकाते हैं वह दरअसल माटी-मोल है और उनका जबर्दस्त शोषण हो रहा है। हुम ने इन बिचौलियों को हटाकर सीधे व्यापारियों को रबर और चमड़ा बेचने के लिये सहकार बनाने और अभी की अदल-बदल की बजाय पैसे में कई गुना कीमत पाने की सोची। यह सूचना उसने गोरे और मेस्तीसो आकाओं को दे दी। नतीजे में डण्डे से उसकी खोपड़ी खोल दी गयी, झोपड़ी में आग लगा दी गयी, ग्रामवासियों को पीटा गया, औरतों के साथ बलात्कार किया गया, हुम को वे अपने साथ

मण्डी ले गये जहां उसका सिर मूंड दिया गया, कोड़ों से पीटा गया, गर्म अण्डो से उसकी आंख जलाई गयी और पेड़ से कई घण्टे उल्टा टांग रखने के बाद नीचे उतारा गया और गांव जाने के लिये छोड़ दिया गया।

वे अत्याचारी खुद भी मुट्ठी भर अशिक्षित, नंगे पैर भटकते गोरे और मेस्तीसो थे जिनकी हालत अपने शोषितों से ज्यादा बेहतर नहीं थी। जो कुछ वे अगुआरुना लोगों से खसोटते थे उससे वे अमीर नहीं बन रहे थे, बमुश्किल जीने लायक कमा रहे थे- दुनिया के इस भूभाग में शोषण भी मानवता के निम्नतम स्तर पर चल रहा था। हुम को पीटते हुए वे यही दोहराते रहे थे - 'कोऑपरेटिव को भूल जाओ।'

यह घटना मातोस मार और आत्मवाची को अधिक गहन सोच-विचार के लिये विचलित करती है। समस्या का असली हल कहां है ? क्या उन्हें जैसा का तैसा बचाए रखना संभव था ? क्या यह मृगमरीचिका वांछनीय भी थी ? क्या जैसे वे जीते चले आ रहे हैं वैसा ही बना रहने में उनका हित था ? अपनी अल्पविकसित स्थिति के कारण ही तो वे अन्याय और शोषण के शिकार होते आ रहे हैं।

साउल ने क्या कहा होता ? कि विराकोचा(गोरे, विदेशी) उनके इलाके से चले जाएं ताकि मूल रहवासी अपनी पारम्परिक जीवनपद्धति की ओर लौट सकें, कि इनके बीच सहअस्तित्व असंभव है, कि विराकोचा उन्हें प्रगति के पथ पर नहीं जाने दे सकते, वे केवल उन्हें विनाश की ओर धकेलेंगे, कि अपने पिछड़ेपन के बावजूद उनके पास प्रकृति के साथ रहने का सारा जरूरी ज्ञान और कौशल उनके पास है, उनका उस क्षेत्र पर आधिपत्य स्वीकार किया जाए, फिरंगियों को वहां से खदेड़ दिया जाए।

मातोस मार का मत इसी के पक्ष में है। आत्मवाची असहमत है। उसे लगता है कि साउल ने माना होता कि उनका भला पीछे लौटने में नहीं, आगे बढ़ने में है, वे यदि कोऑपरेटिव बनाकर शहरों से व्यापार करेंगे, आर्थिक सामाजिक उन्नति करेंगे तो 'सभ्य' लोगों के लिये उन्हें प्रताड़ित करना असंभव हो जाएगा। किसी भी विचारधारा की कोई भी सरकार आदिवासियों को जंगली की स्वायत्त सत्ता या सम्पूर्ण स्वामित्व दे देगी, यह व्यावहारिक तौर पर असंभव है

इसलिये इन्डियनों के प्रति विराकोचाओं के व्यवहार को बदला जाए...।

इसके आगे बहस समाजवादी विचारों के प्रभाव से उत्पादन-सम्बन्ध के चिरपरिचित विषय की ओर मुड़ जाती है 'जो हमारे लिये तब तक तमाम समस्याओं को समझने और हल करने की क्षमता रखने वाली जादुई छड़ी थी।' वे इस निष्कर्ष पर पहुंचते हैं कि अत्यधिक व्यक्तिगत

लाभ की कामना का स्थान यदि समाजसेवा का विचार ले लेगा और लोगों के परस्पर सम्बन्धों में एकता होगी तब समाजवादी तंत्र में पेरू के आधुनिक और पिछड़े हुए धड़े आपस में निश्चित ही सौहार्द से रह सकेंगे। लेकिन वे यह भी निश्चित जानते हैं कि साउल ने इसे असंभव माना होता कि मार्क्स और मारिजातेगुई (पेरू के अगुआ मार्क्सवादी चिन्तक जो पेरू की परिस्थिति के अनुरूप मार्क्सवाद के स्थानीय संस्करण के आग्रही थे, 35 वर्ष की आयु में कालकवलित) के विज्ञान से स्पंदित नये पेरू में अमेजन के आदिवासी आधुनिक तौर तरीकों को भी अपनाएंगे और परम्परागत संस्कृति को संजो कर भी रखेंगे। औद्योगिक विकास चाहे पूंजीवाद के नाम पर हो, या साम्यवाद के नाम पर, वह अन्ततः इन संस्कृतियों को उजाड़ कर ही दम लेगा। इस भयानक और अटल नियम के विपरीत एक भी सबूत सामने नहीं आया है।

साम्राज्यवादी मिशनरियों के काम की अगली कड़ी : नृतत्व

साउल की रुचि, लगाव और योग्यता को देखते हुए स्वाभाविक निष्कर्ष यही हुआ होता कि वह नृतत्वशास्त्र में प्रोफेसर या शोधकर्ता का जीवन अपनाएगा। शोध में उसकी असाधारण रुझान को देखते हुए विश्वविद्यालय इतिहास विभाग भी उसे अपने यहां लेने का उत्सुक है। अकादमिक विभागों में यह इतिहास बनाम नृतत्व में बलाघात के बदलाव का समय है। इतिहास की तुलना में नृतत्व का महत्वपूर्ण हो उठना इतिहासज्ञों के मन में एक आशंका पैदा करता है क्योंकि वहां 'संस्कृति के केन्द्र से मनुष्य को हटाकर वस्तुओं को रख दिया जाता है।

लेकिन साउल दोनों में से किसी की उम्मीद को पूरा नहीं करता। सान मार्कोस के इतिहास में वह पहला छात्र है जो छात्रवृत्ति टुकरा कर फ्रांस में पढ़ने का अवसर छोड़ देता है। उसका शोध सिर्फ उस सम्पर्क की शुरुआत है जिसे आगे चलकर एक प्रगाढ़ सम्बन्ध ओर फिर पूर्ण तादात्म्य में बदल जाना है।

आत्मवाची को अपनी स्मृतियात्रा में इतिहास और नृतत्व विभागों के दो सदस्यों के बीच की बातचीत एक महत्वपूर्ण संकेत की तरह याद आती है कि साउल सूरतास ने इस सत्य को भांप लिया है कि मानव-विज्ञान एक झूठा विज्ञान है जिसका आविष्कार फिरंगियों ने अन्य सामाजिक शास्त्रों को नष्ट करने के लिये किया है। उसे यह विश्वास हो गया है कि हम भी उन पर धावा बोल रहे हैं, उनकी संस्कृति के प्रति हिंसा कर रहे हैं। हम लोग जो काम कर रहे हैं वह अनैतिक है। मानवशास्त्रियों के काम का परिणाम भी अवश्य भावी रूप 'से उन रबर उत्पादकों, जंगल काटने वालों सेना में भरती करने की गरज से आए गोरो और दूसरे मेस्तीसों जैसा ही जनजातियों को मिटा देने वाला

होगा। उसका मानना है कि हम साम्राज्यवादी मिशनरी दलों के काम की ही अगली कड़ी हैं। हम विज्ञान के नाम पर उन इंडियनों को मिटा देने का वैसा ही कुचक्र रचने के दोषी हैं जैसा मिशनरी आत्मा के उद्धार के नाम पर चलाते आए हैं।

ऐसी मूलगत शंकाएं उठाने वाला छात्र आशंका का पात्र होता है, कहीं वह आदिवासी इंडियनों की संस्कृति को बचाने के देशज विद्रोह को दुबारा आग तो नहीं दे रहा है? ऐसा छात्र विभागों में नहीं पाला जाता।

जनजातियों के अध्ययन का उद्देश्य उनको बेहतर जान कर एक अच्छा पाश्चात्य नागरिक, या एक अच्छा आधुनिक मनुष्य, या अच्छा पूंजीपति, या सुधारवादी गिरजाघरों का अच्छा क्रिश्चियन, दूसरे शब्दों में सभ्य बनाने के नाम पर उनकी हितचिन्ता का छद्म है जिसका वह विरोधी है। वह जानता है कि 'हमारी संस्कृति बहुत बलशाली, बहुत आक्रामक है। वह जिसे भी छूने को बढ़ती है, अन्ततः उसे लील जाती है।' और मानता है कि 'उनके प्रति आदर का तरीका यही है कि हम उनके निकट न जाएं, उन्हें न छुएं.....हमें उनको अकेला छोड़ देना चाहिये।'

'वे घुन की तरह आदिवासी समूहों में प्रवेश कर जाते हैं': भाषाविद

जिस ग्रीष्मकालीन भाषासंस्थान ने आत्मवाची को इस अभियान में शामिल होने का मौका दिया है, वह अमरीकी है। उसे पेरू के शिक्षा मंत्रालय का सहयोग भी प्राप्त है। उसका मकसद अमेसॉनियन बोलियों का अध्ययन तथा उनके व्याकरण और शब्दकोश का संचय है। सरकारी सहयोग का कारण यह है कि जबतक अपने यहां से कोई यह काम नहीं करता तब तक अच्छा है कि कोई और कर दे। इसके अलावा संस्थान का इन्फ्रास्ट्रक्चर-हाइड्रोप्लेन, रेडियोसंचार सुविधाएं इत्यादि- सुदूरजंगलों में काम करते शिक्षकों, प्रशासनिक अधिकारियों सैन्य-बल को भी इस्तेमाल के लिये उपलब्ध रहता है। संस्थान के विरोधी भी कम नहीं हैं जिनके मत और टिप्पणियां संस्थान की संदिग्धता को उजागर करती हैं। वामपंथी इसे अमरीकी साम्राज्यवादी भेदिया तंत्र कहते हैं तथा नव साम्राज्यवादी घुसपैठ के पहले कदम मानते हैं। कैथोलिक मिशनरी का कहना है कि वे भाषाविद् के वेश में प्रोटेस्टेन्ट मताग्रही अतः विरोध के पात्र हैं। प्रतिपक्षी नृतत्वशास्त्री उन्हें आदिम संस्कृतियों के प्रदूषण, पश्चिमीकरण तथा व्यापारिक अर्थव्यवस्था में घसीटने के दोषी करार देते हैं। परम्परावादी दक्षिणपन्थी राष्ट्रवादी कारणों से असहमत हैं। कुछ लोग इसलिये भी असहमत हैं कि इस तरह जनजातियां स्पैनिश से पहले अंग्रेजी बोलना सीखेंगी। इत्यादि। प्रश्न वही है। जनजातियों के साथ संपर्क के पीछे का प्रच्छन्न मकसद क्या है?

वहां रहते हुए आत्मवाची को पता चलता है कि जनजातीय भाषाओं के अध्ययन तथा उनके व्याकरण और शब्दकोश का संचय के अध्यवसाय के पीछे संस्थान का मकसद मूलतः धार्मिक है। भाषा संस्थान में कार्यरत भाषाविद विभिन्न चर्चों से जुड़े हुए हैं और उनकी प्रेरणा आदिवासियों को उनकी अपनी भाषा के छन्द और उतारचढ़ाव में ईश्वर की आवाज़ सुनाने के लिये बाइबिल के अनुवाद का मकसद है। उनकी आस्था और समर्पण अन्दिग्ध है। आदिवासियों और उनके बीच काम करने वाले भाषाविदों के रहन सहन में कोई फर्क नहीं है। वे घास फूस की खुली झोपड़ियों में, कभी कभी खुले आकाशतले बहुत कम भोजन और आदिवासी तौर तरीकों के साथ रहते हैं। अपने काम के प्रति उनकी निष्ठा और खुद को परिस्थितियों के अनुकूल ढाल सकने की क्षमता सराहनीय है। आत्मवाची को 'वे ऐसी दृढ़ आस्था' का साकार रूप लगते हैं जो लोगों को अपना समूचा जीवन अर्पित कर देने के लिये प्रेरित और कैसा भी बलिदान देने को तत्पर करती है। 'ऐसी दृढ़ आस्था.....मेरे भीतर एक साथ भय और करुणा जगाती है क्योंकि इसके भीतर अद्भुत वीरता और धर्मान्धता, निःस्वार्थ कर्म और अपराध दोनों समान रूप से जन्म ले सकते हैं।'

संस्थान में रहते हुए उसकी माचिग्वेंगा जनजाति से मुलाकात तो नहीं होती लेकिन उनके इतिहास, भूगोल, भाषा, रीतिरिवाज, जीवनपद्धति विश्वास आदि के बारे में एकत्रित जानकारियां जरूर मिल जाती हैं जो उसे चमत्कृत करने की हद तक आकर्षित करती हैं और उनके साथ एक आजीवन रोमांस का आरंभ होता है। उपन्यास का यह हिस्सा माचिग्वेंगा के बारे में इतनी प्रामाणिक शोध का इस्तेमाल करता है कि इस जनजाति के अध्ययन की निर्दिष्ट पुस्तक सूची में उपन्यास का नाम दर्ज है।

इस अभियान से लौट कर उसकी मुलाकात साउल से हाती है। सन 58 में यह उनकी आखिरी मुलाकात है। भाषा संस्थान और भाषाविदों के प्रति उसके आक्रोश की तीव्रता से वह स्तब्ध रह जाता है। साउल न उनकी निष्ठा से प्रभावित है, न उनके अध्यवसाय अथवा अनुकूलन-क्षमता से। वह उनसे नफरत करता है। उनकी जिस आस्था का प्रशंसक आत्मवाची है, उसके विषय में वह मानता है कि कट्टरवादियों में शहीद हाने की लालसा सबसे अधिक देखी गयी है। उसके अनुसार भाषाविद और पैगम्बर सबसे खतरनाक लोग हैं। वे घुन की तरह आदिवासी समूहों में प्रवेश कर जाते हैं और फिर उन्हें भीतर से खोखला कर देते हैं। उनकी आत्मा, उनके विश्वास, उनकी चेतना, उनके वजूद तक की जड़ों में घुस जाते हैं।

मिशनरी खतरनाक हैं, भाषाविद के चोले में मिशनरी उनसे भी ज्यादा। 'जंगल मिशनरियों को लील रहा है, भूख से अधमरे और फिर

वे गिने चुने हैं वे खुद जरूरतमन्द हैं कि दूसरों का धर्म-परिवर्तन करने की स्थिति में ही नहीं हैं। जंगल ने उनके पंजो को भोथरा कर दिया है।'

लेकिन इन भाषावैज्ञानिकों का मामला कुछ और है। वे अधिक परिष्कृत हैं। उनके पीछे आर्थिक ताकतें और बहुत ही कारगर संगठन है। जिनके सहारे वे अपने प्रगति के विचार, अपने धर्म और अपने मूल्य अपनी संस्कृति के बीज वहां बोने में सफल हो सकते हैं। भाषा चेतना के माध्यम भी हैं और स्वयं उसके पर्याय भी। भाषा के जरिये चेतना में घुसा जा सकता है, उसे रूपान्तरित किया जा सकता है, प्रदूषित भी।

जहां तक आस्था और समर्पण का प्रश्न है, मिशनरी, भाषाविद मिशनरी और साउल अपनी दृढ़ता में एक दूसरे से भिन्न नहीं हैं। अन्तर उद्देश्य का है। मिशनरी उन्हें बदल कर अपने सांचे में ढालना चाहते हैं जिसका अर्थ उन्हें और अधिक शोषणीय बनाना है। साउल उनकी स्वाधीनता का रक्षक है इसलिये मिशनरी किस्म के भाषाविदों से नफरत करता है- चार सौ, पांच सौ साल के इतिहास में इन छोटे छोटे आदिवासी समूहों को कोई गुलाम नहीं बना पाया...इंका साम्राज्य ने अपनी सेनाएं भेजी...कैसे जंगल में उनके सैनिक गुम हो गये, कैसे ऐंटिस (पेरू के मूल निवासी) उनके हाथों से भाग निकले। वे एक को भी अपने अधीन करने में सफल नहीं हुए। इसके विपरीत जब इंका साम्राज्य-ताउआनतिन सूजो का अपने से अधिक शक्तिशाली राज्य के साथ सामना हुआ तो उनका क्या हथ्र हुआ? स्पैनियर्ड्स का हाल भी इंकाओ से बेहतर नहीं रहा? ऐंटिस इलाकों को जीतने की उनकी सारी कोशिशें नाकाम रहीं जब कभी वे उनके हाथ लग जाते तो वे उन्हें मार डालते थे लेकिन ऐसा हुआ ही बहुत कम। 1500 से 1800 के बीच हजारों घुमन्तू सैनिक, साहसिक घुमन्तू, निर्वासित चोर बदमाश, मिशनरी इत्यादि पूर्वी इलाके में आए। क्या कोई एक भी जनजातीय समूह को महान ईसाई धर्म या पश्चिमी सभ्यता की छत्र छाया में लाने में सफल हो पाया। जो कोई नहीं कर सका, वहां बहुत संभव है कि भाषाविद संध लगा लें।

वे जो सदा से चलते आए हैं : माचीग्वेंगा

संस्थान में आत्मवाची की मुलाकात मिशनरी आस्था के भाषाविद प्रतिनिधि शिनलदम्पति से हुई थी और उनके पास अत्याचार के आगे माचीग्वेंगाओं की बेबसी, बेहाली और टूटन की जो जानकारीयां थीं उनसे दल के दो नृत्यशास्त्री भी अवगत नहीं थे। इस जानकारी ने उन्हें स्तब्ध कर दिया था कि माचीग्वेंगा समुदाय बिखरने और विलुप्त हो जाने के कगार पर खड़ा था।

कुल आबादी चार से पांच हजार के बीच लेकिन दो धड़ों में बंटी हुई जिनमें से एक धड़ा भौगोलिक संयोग से बाहरी दुनिया के सम्पर्क में आया। दो ऊंचे पहाड़ों के बीच गहरा दर्रा जिसमें भंवर, कोलाहल

और झाग से घुमड़ती वेगवती उरुबम्बा बहती है। इस भौगोलिक संयोग के दूसरे सिरे पर माचीग्वेंगा आबादी के दूसरा धड़ा आदिम अवस्था में पठारी जंगलों में छितरा, किसी भी तरह के बाहरी प्रभावों और गोरों के सम्पर्क से बचता आया है। इसमें भी ज्यादा कारगर बात शायद यह रही हो कि फिलहाल विराकोचाओं (गोरे लोगों) को लुभाने लायक कोई बात वहां नहीं थी। यह आबादी भी अपने भीतर अनेक छोटे छोटे समूहों में बंटी थी। माचीग्वेंगा सामान्यतः शान्तिप्रिय और आज्ञाकारी समुदाय है। एक ओर वे अपनी आपसी भीतरी झड़पों में अन्य जनजातियों से मुंह की खाते हैं, और दूसरी ओर रबर निकालने वाली शहरी टोलियों के लिये वे आदर्श मजदूर और आसान शिकार भी साबित होते हैं। उनको विनाश के कगार पर पहुंचाने वाली यही वजहें हैं।

उन पर विधिवत विस्तृत शोध लगभग नहीं के बराबर हुआ है और जो कुछ भी मिलता है, प्रायः किसी पादरी या अन्य मिशनरी द्वारा लिखित भाषा तथा रीति रिवाजों का वर्णन है लेकिन इस बात के अस्पष्ट से संकेत मौजूद हैं कि वे तब ऐंटिस कहलाने वाले, इंका साम्राज्य से खदेड़े गये लोग, जिनके जंगलों पर कभी कब्जा नहीं हुआ, जो कभी गुलाम नहीं बनाए गये, जिनको औपनिवेशिक दस्तावेजों में मानारीस, ओवातारीस, पिल्कोनसोन आदि नामों से जाना गया वे अनेक समुदाय मूलतः यही माचीग्वेंगा हैं। साउल ने भी उन्हें ऐंटिस कह कर याद किया था। रहस्यमय मिथकीय उत्पत्ति, धुंधली अस्मिता। अनादिकाल से भटकते आ रहे लोग, शायद ही कभी एक जगह बसे हुए समाज के रूप में रहते रहे हों, निरन्तर विस्थापन का इतिहास उनकी कहानियों में जीवित है। ज्यादा लड़ाकू जनजातियों, या फिर गोरों द्वारा उत्तरोत्तर पहले से कहीं अधिक खराब, अस्वास्थ्यकर आबोहवा और अनुपजाऊ इलाकों में रहने को मजबूर किये जाते हुए, जहां कोई बड़ा समूह निर्वाह कर ही नहीं सकता। इसलिये दस या दस से भी कम सदस्यों की टोलियों में रहते हुए, शिकार की सुविधा और सुलभता की इच्छा से एक दूसरे के लिये पर्याप्त फासला छोड़ते हुए बहुत सख्त जिंदगी जीते हैं।

साउल को लगता, और उन्हें खुद भी कि, एक जगह टिक कर न रहना, व्यवस्थाग्रस्त न होना, भटकते रहना उनके बचे रहने का रहस्य है।

उनके जीवन दर्शन में शान्ति सबसे ज्यादा मूल्यवान है। आत्मवाची को साउल ने समझाया था, कभी किसी बात पर तिल का ताड़ न बनाना, हंडिया में तूफान न लाना, हर प्रकार के भावनात्मक उफान को नियंत्रित करना, क्योंकि मनुष्य की आत्मा और प्रकृति के बीच गर्भनाल और शिशु के बीच जैसा रिश्ता है। एक के भीतर होने वाली कैसी भी हिंसा दूसरे के भीतर प्रलयकारी तबाही मचा देती है।

आदिवासी समूहों के बीच भी अलग अलग कबीलों में, एक ही छोटे छोटे धड़ों के बीच भी हिंसा हैं

माचिग्वेंगा समूह ने उनके बीच रहते हुए भी, या शायद इसीलिए ही, अपने लिये शान्ति के दर्शन का आविष्कार किया है। शान्तिप्रियता के कारण ही शायद मृत्यु के प्रति सहज स्वीकार भाव है जिसे शिनलदम्पति की नजरों से यूं भी देखा जा सकता है कि उनमें खुद को बचाने का संकल्प, जीने की लालसा क्षीण हो चुके हैं। मृत्यु के स्वयं वरण का चलन बहुत अधिक है। साधारण सा क्षोभ एक माचिग्वेंगा को प्राण त्याग देने को विवश कर सकता है। यूं तो छींकना भी उन्हें भयभीत कर देता है लेकिन एक बार बीमार पड़ जाने पर- अन्य जनजातियों से सर्वथा अलग-वे उपचार से इंकार करते हैं, जब एक या दूसरी तरह से मरना निश्चित है तो लाभ ही क्या? बीमार व्यक्ति को नदी की ओर जाते और वहां लेटे मृत्यु का इंतजार करते अक्सर देखा जा सकता है

उनकी कठिन किन्तु जटिल के विलोम अर्थ में सरल जीवन पद्धति उनकी भाषा में भी प्रतिबिम्बित है। व्यक्तिवाची नाम हैं ही नहीं, तात्कालिक प्रसंगविशेष के जुड़े नाम जो प्रसंग के साथ ही बदल जाते हैं-वह जो आगन्तुक है; वह जो चला जाता है; अभी अभी मरी स्त्री का पति, जो नाव से उतर रहा है, अभी जिसने तीर छोड़ा वह इत्यादि। दस बारह लोगों के टोले में रहते हुए इस किस्म की तात्कालिक पहचान संभव है।

लेकिन व्याकरण में क्रियापद का इस्तेमाल जटिल है। या काल की एक भिन्न अपरिचित अवधारणा की वजह से अतिशय सरल होने के बावजूद जटिल प्रतीत होती है। वर्तमान और भूत अक्सर आपस में गड़बड़ होते रहते हैं। 'अभी'शब्द में 'आज' और 'बीता हुआ काल' तो सम्मिलित है ही, वर्तमान काल के रूप में हाल में ही घटी हुई घटनाओं के लिये भी प्रयोग किया जाता है। मानो उनके लिये केवल भविष्य ही है जिसका कोई ठोस आकार या व्याख्या है।

कम से कम मैंने तो यही जाना है: किस्सागो

उपन्यास के आठ अध्यायों में से तीन अध्याय मुख्य घटनाक्रम से असम्बद्ध, पुराकथा जैसी संरचना में आप्तवचन शैली में सुनाए गये हैं। हर प्रसंग के बाद 'आब्लादोर' की वाचकवाणी अनुभवसिद्ध प्रामाणिकता की मुहर लगाती इस आशय का कोई वचन कहती है-'कम से कम मैंने तो यही जाना है।' ये माचिग्वेंगा मिथक हैं, रूपकीय अर्थों की अनेक अनेक परतों से संवृत्त जिनके गर्भ में उनका समूचा जीवन संचित है, लगातार विस्थापित होते रहने का इतिहास-पहले इंका फौज, फिर स्पैनिश विजेता और मिशनरी फिर रबर, लकड़ी के व्यापारी, सोने की खोजी, बीसवीं सदी में आप्रवासी, बीच बीच में प्राकृतिक प्रकोप, अन्य

जनजातियों के साथ टक्कर मुठभेड़। विस्थापन जिसे उन्होंने स्वयं लगातार चलते रहने के दर्शन के रूप में, आत्मरक्षा के उपाय की तरह अर्जित कर लिया है।

आत्मवाची इस जनजाति के ब्रह्माण्ड की परिकल्पनाओं से जुड़ी कथाओं पर मुग्ध है। वे जटिल समीकरणों को साधती परिकल्पनाएं हैं। उनके लिये ब्रह्माण्ड के केन्द्र पृथ्वी है जिसके ऊपर तथा नीचे दो-दो प्रदेश हैं जिनमें से प्रत्येक के अपने चांद सूरज और नदियों का ताना बाना है। सबसे ऊपर इंकाइत प्रदेश में सर्वशक्तिमान तासुरिंची का वास है जिसकी सांसों से लोग पैदा हुए थे। इस की नदी अविनाशी पुण्यसलिला मेरिआरिनी है जिसकी धुंधली छवि धरती से दिखती है-आकाशगंगा, उर्वर कछारों पर फलदार बगिया। फिर भारहीन बादलों का प्रदेश मेकोरीपात्सा है, उसके नीचे धरती सदैव चलायमान माचिग्वेंगा का घर है। उसके नीचे मृत आत्माओं का अंधेरा प्रदेश जिसके आरपार कामाबिरिया नदी बहती है जिसे पार कर मृतात्माएं अपना प्रदेश ढूंढती हैं। सबसे भयानक प्रदेश गामाईमोरनी जिसके स्याह पानी वाली नदी में एक भी मछली नहीं है और जिसके किनारे पर कुछ नहीं उगता। वहां दुष्टात्मा वैत्य मण्डली के सम्राट केन्तीबाकोरी का साम्राज्य है। हर प्रदेश का सूरज अपने से ऊपर के प्रदेश से कम चमकीला, कम प्रकाशमान होता है। इंकाइत प्रदेश का सूरज स्थिर और धवल उजास वाला है, गामाईमोरनी का सूरज स्याह और बर्फ सा जमा हुआ है। धरती का दुविधा में पड़ा सूरज आता जाता रहता है और उसका भविष्य मिथक के अनुसार माचिग्वेंगाओं के आचार-व्यवहार पर टिका हुआ है।

इन अद्भुत अध्यायों को खुद पढ़ कर ही जाना जा सकता है कि उनमें दसअस्त क्या है। पता नहीं इन्हें ल्योसा ने खुद रचा है या केवल दुबारा सुनाया है। बानगी के तौर पर गहन सम्पादन के साथ एकाध मटियामेट का छोटा सा टुकड़ा-नमूना भर प्रस्तुत है-

'उसके बाद धरती के आदमी चल पड़े। सीधे सूरज की ओर जो गिर रहा था.... वे चल पड़े ताकि उसका गिरना थम जाए, ताकि उठने में हम उसकी मदद कर सकें...तब सूरज क्या काशीरी यानी चंद्रमा से अपनी लड़ाई लड़ चुका था?... फिर उस अंधेरे में डरे हुए अस्थिर चित्त लोग अपने ही बिछाए जाल में फंसने लगे...कुछ करना होगा, लेकिन क्या, हम क्या करें...जानेवालों ने लौटना बन्द कर दिया, प्रकोपों से घबरा कर वे हमारी और बादलों की दुनिया के बीच कहीं खो गये। ...नीचे वे जमीन पर वे चलते रहे, उन्हें धीमी गति से बहती हुई मृतकों की नदी कामाबिरिया की आवाज आ रही थी। पास आती हुई, उन्हें पुकारती सी।...तम्बाकू के धुंए में गोते खाते सेरिपिगारी ने कहा।' चलो...चलते रहो और इसे याद रखना। जिस दिन तुम चलला

बन्द कर दोगे, तुम्हारा नामोनिशान मिट जाएगा। अपने साथ सूरज को भी नीचे घसीट लाओगे।'.... यूँ चलते हुए जीवित रहने के लिये सामान को हल्का रखने की जरूरत थी....जो आवश्यक था उसे साथ लेकर वे चल पड़े। क्या उनका घने जंगलों का पैदल सफर एक सजा थी ? नहीं?, बल्कि एक उत्सव था...नवजात शिशु यूँ ही चलते चलते जन्म लेते और बूढ़े यूँही चलने के दौरान मर जाते'

चरैवेति। यह माचिग्वेंगा जीवनपद्धति का मूल निर्देश है। 'पहले' और 'बाद' में यह उनका कुल काल विभाजन है। पहले का मतलब 'चलना शुरू करने के पहले' जब वे कहीं बसे थे और 'बाद में का मतलब 'चलना शुरू करने के बाद।' यह किसी कालावधि में निश्चित बसना नहीं है बल्कि जहां कहीं भी, जब भी वे सुस्ताने के लिये कहीं थोड़ा भी अधिक रुके हों उसके बाद चल देने का निर्णय 'पहले' और 'बाद' की शब्दावली में दोहराया जाता है और 'यह जगह अब हमसे अघा गयी है' कह कर अभिव्यक्त किया जाता है।

संस्थान से लौटते हुए आखिरी रात शिनल दम्पति के साथ माचिग्वेंगा समुदाय की सामाजिक सांस्कृतिक संरचन के बारे में बात करते हुए आत्मवाची की हमारे ओझा गुनिया के समक्षक 'सेरिपिगारी' और 'माचीकनारी' के अलावा किन्तु उन्हीं की तरह सम्मानित भूमिका वाले एक व्यक्ति के बारे में सूचना मिलती है- आब्बालोर। इसका अनुवाद ठीक ठीक कथावाचक या किस्सागो नहीं बल्कि बातून है, स्पैनिश में थोड़ा असम्मानजनक जिसे ल्योसा ने अपने उपन्यास से शीर्षक की तरह चुनकर अपने उपचार से सम्माननीय बना दिया है।

समुदाय में उसकी भूमिका स्पष्ट तो नहीं लेकिन अनुमानतः वह गुरु या नेता जैसा कोई अधिकारसंपन्न पद नहीं क्यों उनके व्यवस्थामुक्त समुदाय में किसी तरह का कोई शासन या सत्ताकेन्द्र है ही नहीं। उनके बीच मुखिया का पद भी विराकोचाओं ने ही आरोपित किया है शायद वह कुछ अंशों में आध्यात्मिक गुरु भी हो लेकिन उसका प्रमुख काम बोलना है। माचिग्वेंगा एक बतरसिया समुदाय है। कथावाचक समाज के भीतर संवदिया का काम करता है और अतीत की चर्चा भी, शायद वह समुदाय का स्मृतिलेखा हो हालांकि ऐसा निश्चयपूर्वक कहना कठिन है क्योंकि उनकी भाषा में भूत और वर्तमान को अलग अलग करना आसान नहीं है। वह हफ्तों लम्बी कठिन जंगलों की यात्राएं करता है ताकि एक माचिग्वेंगा समूह को दूसरे के किस्से सुना सके, याद दिला सके कि दूसरे अभी जिन्दा हैं, साझा परम्पराएं, मान्यताएं, पुरखे, सुख दुख-तमाम दूरियों के बावजूद वे एक ही समुदाय के हिस्से हैं, वह किस्सागो है, मानवमन को तरंगित करने वाली, सबसे सरल और आजमाई हुई युक्ति-कहानी सुनाता है- जीता जागता जीवन रस -जो घुमन्तू माचिग्वेंगा समुदायों को एक दूसरे से जोड़ कर एक समाज

बनाता है, मानो वह पूरे समुदाय के मन मस्तिष्क का कोई हिस्सा हो।

ये सभी बातें अनुमानजन्य हैं क्योंकि माचिग्वेंगा सम्मानपूर्वक आब्बालोर का नाम तो लेते हैं लेकिन उसका जिक्र उठने पर बात का रुख मोड़ देते हैं और चूंकि शिनल दम्पति बहुत मुश्किल से उनके साथ सम्पर्क साध पाए हैं इसलिये अपनी तरफ से ऐसा कोई आग्रह नहीं करते जो किसी तरह का हस्तक्षेप जान पड़े और बाधा बन जाए।

आत्मवाची को आब्बालोर का ख्याल रोमांचित और सम्मोहित करता है, उस रात के बाद वह उन्हें अपने दिल दिमाग से खदेड़ नहीं पाता, उसे लगता है कि वे इस बात का जीता जागता सबूत हैं कि किस्सा कहानी सिर्फ मनोरंजन का साधन नहीं, एक शाश्वत वस्तु है जिससे लोगों का अस्तित्व जुड़ा हो सकता है।

लेकिन संस्थान से लौटकर आत्मवाची साउल के साथ अपनी आखिरी मुलाकात की बातचीत में आब्बालोर के बारे में बताता है तो साउल भी कथावाचकों के विषय में किसी जानकारी से इंकार भी करता है। न केवल उसे रफ़ा दफ़ा कर देता है, बल्कि समुदाय के स्मृतिलेखा को भी महज़ एक छल बताता है-'स्मृति एक धोखा है, एक जाल, इससे अधिक कुछ नहीं, वह पूर्व घटित को बदल डालती है, हौले से उन्हें पुनर्गठित करती है ताकि वह वर्तमान के खांचे में ठीक से बैठ जाए।'

इसके बाद साउल से उसकी मुलाकात नहीं होती लेकिन उसे साउल की याद बार बार आती है, मित्रता की वजह से भी और माचिग्वेंगाओं की वजह से भी। और आब्बालोर तो उसको आविष्ट ही कर चुका है। उसके बारे में पता उसे कुल इतना ही चलता है कि हाल में हुए कामों में कथावाचकों के सम्बन्ध में कोई जानकारी नहीं प्राप्त होती। पचास के दशक के बाद इनका कोई सन्दर्भ नहीं मिलता। 19 वीं सदी के यात्रा वृत्तान्तों में इनका जिक्र है, तीस और चालीस के दशक में उनके जिक्र बारबार आता था। पचास के आसपास उनकी उपयोगिता क्या लुप्त हो चली थी?

वह आब्बालोर पर लिखने की योजना बनाता है, उनके बारे में लगातार पढ़ता और तैयारी करता है, बार बार लिखता भी है लेकिन लिखे हुए को फाड़ता-फेंकता, सन्तुष्ट नहीं होता। बार बार साउल को मदद के लिये पत्रों में गुहारता भी है लेकिन उत्तर नहीं पाता। अब उसे पहले की तरह साउल के विचार तर्कहीन या अवास्तविक नहीं जान पड़ते। साउल और माचिग्वेंगा उसे चेतन-अवचेतन का स्थायी हिस्सा बन चुके हैं, अदम्य आकर्षण का स्रोत वस्तुतः असली उपन्यास तो यहीं हैं, आब्बालोर की वाणी, आत्मवाची का अन्तरंग आह्वान और अनुपस्थित अदृश्य साउल और इनके प्राणतत्व से धड़कता शेष जनजातीय जीवन के अज्ञात -अल्पज्ञात -बहुज्ञात सन्दर्भों का लेखा-जोखा।

साउल के बारे में भी पता कुल इतना चलता है कि वह इज़राइल चला गया क्योंकि उसके पिता ने इज़राइल जाकर मरने की इच्छा प्रकट की थी। वह लीमा में अपनी राह नहीं खोज पा रहा था। माचिग्वेगा के लिये प्रेम बीती हुई बात बन चुकी थी। आत्मवाची को विश्वास तो नहीं होता क्योंकि 'पेरू उसकी रक्तमज्जा में रसा बसा था। पेरू के हालात से त्रस्त उसकी विद्रोह करती आत्मा रातोंरात कमीज बदलने की तरह सबकुछ बदल देना चाहती थी', लेकिन पर अविश्वास का कोई कारण भी नहीं। वह यही सोच कर सन्तोष करता है कि 'मैं उसे जानता हूँ इसलिये मेरे लिये यह देख पाना सहज है कि फिलिस्तीन की कब्जा की गयी ज़मीन का प्रश्न मुंह बाए खड़ा उसके लिये गहरी नैतिक उलझन पैदा कर रहा होगा।'

अगला अध्याय पहली यात्रा के बीस साल बाद भाषा संस्थान पर एक टेलीविजन कार्यक्रम बनाने के सिलसिले में फिर वहां तक की यात्रा के बारे में है। जीवन के रुके हुए अध्याय के अगले पृष्ठ की तरह इस बार उसकी मुलाकात माचिग्वेगा समुदाय से भी होती है और शिनलदम्पति से भी। तब से अब तक वहां भी बहुत कुछ बदल चुका है। सूचना मिलती है कि बिखराब थम गया है, अपने आप को बचाए रखने के लिये जूझते, एक दूसरे से लगभग कटे हुए छोटे छोटे बिखरे समूहों वाली स्थिति अब नहीं है, यदि वैसा ही चलता रहता तो वह समाज अब तक पूरी तरह से विखण्डित हो चुका होता, उनकी भाषा खो जाती और उन्हें किन्हीं दूसरे समूहों और संस्कृतियों द्वारा आत्मसात कर लिया गया होता। अधिकारियों, कैथोलिक मिशनरियों, नृत्यशास्त्रियों नृविज्ञानियों और स्वयं संस्थान की सम्मिलित कोशिशों के फलस्वरूप माचिग्वेगा ऐसी जगहों पर गांव बनाकर रहने के लिये राजी हो गये थे जहां खेती की जा सकती हो, मवेशी पाले जा सकते हों, और पेरू के दूसरे भागों के साथ व्यापारिक सम्बन्ध बनाए जा सकते हों...छः गांव बस गये थे... दो जनजातियों को साथ रहने में दिक्कत नहीं खड़ी हुई थी...सबसे अलग थलग समुदाय भी जब देखेंगे कि एकसाथ एक जगह रहने से उनके भाइयों को कितने लाभ मिल रहे हैं तो वे भी जंगली कन्दराओं को छोड़ कर यहां आ बसेंगे जहां जीवन की अनिश्चितताएं भी कम हैं और जरूरत पड़ने पर मदद भी पाई जा सकती है। उनको राष्ट्रीय धारा से जोड़ने के लिये स्कूलों की स्थापना, सहकारी सांस्कृतिक आयोजन आदि कई ठोस कदम उठाए जा चुके हैं।

एक हद तक अब वे अपने में बन्द निराशावादी और हारे हुए लोगों का समुदाय नहीं थे जैसे कि वे 1958 में थे, प्रगति और परिवर्तन के लिये एक खुलापन आया है। विशेषकर जो इकट्ठा रह रहे हैं, उनमें जीवन के प्रति अधिक लगाव है, लेकिन अलग थलग रहने की आदत में कोई ठोस बदलाव अभी नहीं आया है, जहां संस्थान के लोग हवाई

जहाज से दो तीन घन्टे में पहुंच जाते हैं, वहां नदी के रास्ते किसी बस्ती में पहुंचने में दिनों हफ्तों का समय लग जाता है। मुख्यधारा का अंग बनना अभी असम्भव तो नहीं पर दूर की बात लगती है। नेता और मातहत वाले किसी राजनीतिक संगठन के पूर्ण अभाव के पीछे बिखरी टुकड़ियों में रहने वाले समाज का हाथ था। एक गांव में सामूहिक रूप से रहने के बाद अब व्यवस्थित राजनीतिक तंत्र और प्रशासन की भी जरूरत होगी।

लेकिन अब भी उनमें स्थान परिवर्तन के लिये तत्परता है क्योंकि नदी ने जगह बदल ली है और पानी मछली के लिये बहुत दूर जाना पड़ता है। अब भी दूसरी जगह जा बसने की बात इन लोगों के लिये मुश्किल नहीं थी, जिनका समूचा जीवन ही एक तरह की यात्रा है उनकी बस्तियां तो मानो उनके पूर्वजों की अनन्त भटकन की घुमन्तू प्रवृत्ति के ग्रह नक्षत्रों तले जन्म लेती हैं, एक घुमन्तू नियति से परिचालित और इसके अलावा पेड़ की बल्लियों, सरकन्डों, ताड़ के पत्तों से बनी झोपड़ियों को गिराना और फिर से खड़ा करना सभ्यता के दूसरे घरों को बनाने बिगाड़ने से कहीं सरल था।

आत्मवाची को लगता है कि इन तेईस सालों के हजारों अनुभवों से गुजरता हुआ सिर्फ मैं ही नहीं बदला, या बड़ा हुआ हूँ, वे माचिग्वेगा भी.... इस दौरान कई बदलावों से गुजरे हैं ...मेरी कल्पना में उनकी जो छवि थी उस पर वे खरे नहीं उतरते। अब वे पहले के मुट्ठी भर कारुणिक किन्तु अजेय लोग नहीं थे; गोरों, मेस्तीजों, पहाड़ी लोगों, दूसरी जनजातियों से पीछा छुड़ाते, सदैव भागते, छोटे-छोटे परिवारों के रूप में बिखरे व्यक्ति और समाज के रूप में अपने अवश्यम्भावी को स्वीकार कर उसका इन्तजार करते हुए किन्तु जो इस सब के बावजूद अपनी भाषा, अपने देवी देवता अपने रीति रिवाजों को छोड़ने के लिये राजी नहीं हुए थे... मेरा मन घोर उदासी के गर्त में डूब गया कि घने जंगलों के बीच बिखरा यह समाज जिनके बीच घूमते चंद कथावाचक जो एक तरह से उनके रक्तसंचार माध्यम थे, अब विलुप्त होने के लिये अभिशप्त हैं। ...साउल के सारे भय हकीकत में बदल रहे थे ...वे भी साभ्यतिक दबावों के चलते पुराने तौर तरीके बदल रहे थे, बाइबिल, द्विभाषी पाठशालाएं, मिशनरी मुखिया, व्यक्तिगत सम्पत्ति, पूंजी की महिमा, व्यापार, पश्चिमी पहनावा, क्या मनुष्य के रूप में इन बदलावों ने उनके जीवन को सचमुच बेहतर बनाया था या कि वे प्रभुत्वसंपन्न जंगली अब धीरे धीरे जोम्बीज या कि एक पश्चिमी विद्रूप में बदलते जा रहे थे?

विकास के प्रकट प्रमाण के सम्मुख आत्मवाची की यह उदासी एक सियासी गलतबयानी है जिसके लिये हिम्मत की जरूरत है। क्या यह एक लेखक की कल्पना की छवि पर खरा उतरने के लिये एक समुदाय से

अपने अवश्यम्भावी अन्त की स्वीकृति की कीमत पर भी पुराने तौर तरीकों से चिपके रहने की उम्मीद है? मेरे विचार से त्योसा कुछ और कह रहे हैं।

आत्मवाची अपनी उम्मीद नहीं छोड़ना चाहता, उनके आचार-व्यवहार में इसका एक प्रतिरोध देखना चाहता है। विश्वास करना चाहता है कि... 'उनके भीतर आज भी ऐसी कन्दराएं हैं जहां वे आपको हाथ लगाने की इजाजत नहीं देते... मैंने स्कूल अध्यापिका और मार्टिन से आब्लादोरो के बारे में पूछा... दोनो ने ऐसा जताया मानो वे मेरी बात समझने में असमर्थ हैं... सबसे अधिक पश्चिमीकृत माचिग्वेगाओं के भीतर कहीं अपने विश्वासों के लिये अटूट निष्ठा कायम है। कुछ विश्वास जिन्हें वे छोड़ने को राजी नहीं हैं उन्हें बाहरी लोगों से इस कदर छुपा कर रखते हैं।'

शिनल का कहना है कि कथावाचक दरअस्तल उनके मनोरंजन का माध्यम है, वही उनकी फिल्में, उनका दूरदर्शन हैं। वही उनकी किताबें, उनका सर्कस, व तमाम मनबहलाव के साधन जो हम सभ्य लोग प्रयोग में लाते हैं, उनके पास मनबहलाव का केवल एक साधन है कथावाचकों की पहचान इससे इतर कुछ नहीं है...

लेकिन फिर भी कथावाचक रहस्य की तरह गोपन है, क्यों? माचिग्वेगा के जीवन में नितान्त निजी जैसा कुछ भी गोपनीय नहीं होता, इसके बावजूद!

आत्मवाची शायद यहां अपने उस पुराने समाजवादी स्वप्न की जीवित गूंज सुनने का प्रत्याशी है- नये पेरू में अमेजन के आदिवासी आधुनिक तौर तरीकों को भी अपनाएंगे और परम्परागत संस्कृति को संजो कर भी रखेंगे।

उसके जीवन के रुके हुए कथावाचक सन्दर्भ के बारे में अगली सूचना की आपूर्ति भी यहां होती है। एडविन शिनल को इस बीच माचिग्वेगा समुदाय का गहरा विश्वास हासिल हो चुका है और उनके लिये अब कोई रहस्य बाकी नहीं है। कथावाचक भी नहीं। उन्हें दो बार दो आब्लादोरो का आख्यान सुनने का मिल चुका है। दूसरे आब्लादोर ने अवश्य उनके वहां रहने को लेकर आपत्ति की थी लेकिन उनके आतिथेय, माचिग्वेगा परिवार के आतिथ्य और सत्कार के रहते उनका वहां से उठ जाना संभव नहीं हुआ। शिनल के विवरण के अनुसार आख्यान में 'क्या घालमपेल थी सबकुछ का छौंक लगाता जा रहा था, जो भी उसके दिमाग में आ जाए, एक दिन पहले की दिनचर्या, माचिग्वेगाई ब्रह्माण्ड की कल्पना के चारों लोक, यात्राएं, जड़ी बूटियां, लोग जिन्हें वह जानता था, जनजाति के देवलोक संग्रह के तमाम अद्भुत जीव, देवता, बौने, जानवर, देवलोक का भूगोल, नदियों का

जाल जिनके तमाम नाम शायद कोई याद नहीं रख सकता, कासावा की फसल, केन्तीबाकोरी के दैत्यों की फौज, दुष्टात्माएं, विभिन्न परिवारों में हुए जन्म विवाह मृत्यु का लेखा जोखा, रबर के उछाल का दौर जिसे वे पेड़ों के रक्त दोहन का काल कहते हैं, उस दौरान हुए ब्यौरों की मानो झड़ी लगी थी...'

कथावाचक के आख्यान वाले अध्यायों में वे ऐतिहासिक ब्यौरे भी एक मिथकीय आयाम ले लेते हैं। अतीत तो इनमें बोलता ही है, वर्तमान भी संचित और सुरक्षित होता हुआ अतीत बनता चलता है, कथा सुनने के क्रम में पुनः वर्तमान होता हुआ। इंका, विराकोचा, मेश्कोकेन्तीबाकोरी के दैत्यों की फौज में गिने जाते हैं, रबर बनाने की स्मृति पेड़ के घाव का रक्त दुहने की पीड़ा है, उस काल के आस-पास की कोई दुर्घटना इस पाप का दण्ड और लगभग हर आशंकित और आतंकित कर देने वाली कोई बात उठने और चल देने का संकेत क्योंकि अब वह जगह उनसे अघा चुकी है।

जिसके इर्द गिर्द रहस्य का यह पर्दा बुना गया था वह दूसरा कथावाचक साउल था। उसकी शारीरिक गठन, बालों के रंग और जन्मचिन्ह के विवरण से प्रकट होता है और आत्मवाची इस उद्घाटन से एक साथ कम्पित और स्तब्ध हो उठता है। साउल इज़राइल कभी गया ही नहीं था। उसने सिर्फ अपने प्रस्थान और गन्तव्य के निशान छिपाए। माचिग्वेगाओं पर आधुनिक नृतत्वशास्त्रीय अध्ययन में कथावाचक का जिक्र नहीं मिलता क्योंकि वे कथावाचक की संस्था या अमूर्त विचार को नहीं, एक जीते जागते कथावाचक को बीस साल से वे नृतत्वशास्त्रियों, भाषाविदों, डोमिनिकन मिशनरियों से छिपा रहे थे ताकि जनजाति में हुआ यह प्रतिरोपण विराकोचाओं का ध्यान न आकृष्ट कर ले। उसी ने उनसे ऐसा करने को कहा होगा और अगर उसके कहने से उन्होंने कथावाचक की संस्था और विचार के चारों ओर निषेध की किलेबन्दी खड़ी कर के उसको आश्रय दिया तो निश्चय ही वह उनकी नज़रों में उनमें से एक बन चुका होगा। इस बात का कोई स्पष्ट संकेत नहीं कि कथावाचक के सभी आख्यान सुनानेवाला साउल ही है या कोई और। उनमें सिर्फ वाक् है, वक्ता का कोई परिचय नहीं। तीसरे आख्यान के विवरणों को देखते हुए उसे निस्संदेह साउल का माना जा सकता है। इसमें उसने अपने जन्मचिन्ह, अपने यहूदी देवता यहोवा, अपनी प्रिय कहानी मेटामॉर्फोसिस, माचिग्वेगा के जीवन में अपना पुनर्जन्म और समुदाय की जिन बातों को उसने कभी कूर माना था, सहसा उनकी तर्कसंगति की समझ जैसी बातों को भी माचिग्वेगा कथाकोश और स्मृतिकोश का अंग बना लिया है। वह मानो खदेड़े हुए पीड़ित, बहिष्कृत, निर्वासित अस्तित्वों का एक सामान्य साझा स्मृतिकोश रच रहा हो। उसने कहा भी था, 'स्मृति एक धोखा है, एक जाल, इससे

अधिक कुछ नहीं, वह पूर्व घटित को बदल डालती है, हौले से उन्हें पुनर्गठित करती है ताकि वह वर्तमान के खांचे में ठीक से बैठ जाए।'

कथा का आरंभ और अंत 1984-1985 के आस-पास फ्लोरेन्स की एक जनजातीय जीवन की प्रदर्शनी में आत्मवाची को कथावाचक का चित्र दिखाने वाले पहले और आखिरी अध्यायों पर होता है जो पुनः उसे तथाकथित विकास के आकलन की ओर ले जाता है। इन पिछले चार पांच सालों में भी निस्संदेह उस क्षेत्र में जीवन बहुत बदला है. ... सबसे पहले तेल के कुओं का पता लगा, फिर कामगारों के वे शिविर बने जिनमें काम्पा जामीनाउआ पीरो आदि जनजातियों के साथ माचिग्वेंगा भी भरती हुए। समानान्तर रूप से नशीले पदार्थों की आवक जावक बढ़ी, कोका के बगीचों, प्रयोगशालाओं गुप्त हवाई पट्टियों का जाल बिछाया गया। तार्किक परिणति-कोलम्बियाई और पेरुवियाई पक्षों के बीच आपस में समय समय पर मारकाट और लूटपाट, अन्ततः भय आतंकवाद हिंसा-प्रतिहिंसा के त्रिकोण का अन्त। क्रान्तिकारी आन्दोलन सान्देरो लूमिनोसो की टुकड़ियां कठोर दमन के बाद इन जंगलों में आ घुसी हैं और अमेसोनिया के इस भाग में सक्रिय हैं। उनको सेना के जरिये काबू में लाया जाता है, कभी कभी वायुसेना से बम तक गिराया जाता है।

इस दौरान माचिग्वेंगा उनकी बसाहट वाले गांव अगर अभी हैं तो 'इस विरोधाभासी सभ्यता की अचूक विनाशकारी पद्धति की मार निश्चित ही सह रहे होंगे। एक ओर शेल ऐण्ड पेट्रो, पेरू से मिली मोटी रकम, नशे के व्यापार से मिले डॉलर से ठसाठस भरे कोषागार और दूसरी ओर स्मगलरों, छापामारों, पुलिस, सेना, सेना की खूनी लड़ाइयों में मौत के भयावह खेल से कतई अनजान माचिग्वेंगाओं का लड़ाई में घसीट लिया जाना। हमेशा उनके साथ ऐसा ही हुआ है, पहले इंका फौज, फिर स्पैनिश विजेता और मिशनरी फिर रबर, लकड़ी की व्यापारी, सोने के खोजी, बीसवी सदी में आप्रवासी। कथावाचक के आख्यानों में यही इतिहास मिथक के गर्भ में जाकर कायाकल्प कर लेता है। 'माचिग्वेंगाओं के लिये इतिहास न आगे को बढ़ता न, पीछे को जाता, खुद को दोहराता गोल गोल चक्कर काटता रहता है। संभव है कि उनमें से कुछ एक ने आज भी वह पुराना उपाय ही आजमाया हो बिखराव का, चल पड़ने का, जैसा कि उनकी सबसे लोकप्रिय पुराकथाओं में होता आया है।'

कथावाचक की कथा लिखने को विकल और व्यग्र आत्मवाची की आवाज़ में 'एल आब्लादोर' की रचनाप्रक्रिया से जूझते लयोसा की अपनी आवाज़ सुनाई देती है और साउल में उनके अवचेतन की प्रतिध्वनि। आत्मवाची तर्कसंगत यथार्थ की हदों के भीतर है और साउल उनके पार। विकास की जो गाथा आंखों के सामने घटित हो रही

है तर्कसंगति के भीतर उसकी सीमाएं दिखाई जा सकती हैं, उसे पलटा नहीं जा सकता। साउल के कथावाचक बन जाने के निर्णय को वे बार बार कुरेदते और तर्क की हदों के पार पाते हैं, शायद ऐसा कुछ जिसे वे अपनी आत्मा के अन्तरंग आह्वान में धड़कता सुनते लेकिन सचेत निर्णय से कर नहीं सकते, जिसकी क्षतिपूर्ति में साउल को गढ़ते हैं-

'उसके कथावाचक बन जाने से एक संभव बात असंभव का जामा पहन लेती है। कालप्रवाह के विपरीत दिशा में जाना, पतलून टाई से लंगोट और गुदने, स्पैनिश भाषा से जुड़ी जुड़ी चटकती माचिग्वेंगा भाषा, तर्क से जादू एकेश्वरवाद से विधर्मी सर्वात्मवाद की यात्रा को ही गले से उतारना कठिन है लेकिन थोड़ी कल्पनाशीलता से यह संभव है। इसके आगे की कहानी जितना ही समझो उतना ही दुरूह होती चली जाती है।'

दुरूहता शायद इस अर्थ में कि वह लेखक भी तो बन सकता था, कथावाचक ही क्यों? क्योंकि वह केवल रचना नहीं, एक वैकल्पिक जीवन पद्धति अपनाता है, विपरीत कालप्रवाह के बारे में न सोच स्वयं माचिग्वेंगा होकर अपने भीतर माचिग्वेंगा को बचाता है-

'एक कथावाचक की तरह बोलने का अर्थ होता है उस संस्कृति के मर्म में पैठ कर जीना, उसे महसूस कर पाना, यानी उसके मर्म को छेदते हुए उसके इतिहास और पुराणों में पैठ पाना, उसके गौदने, छवियों, पूर्वजों की आकांक्षाओं और भय को मूर्त स्वरूप प्रदान करना यानी सच्चे अर्थों में गहरी जड़ों वाला माचिग्वेंगा हो जाना, उस प्राचीन वंशावली में मेरे देश के जंगलों में भटकते हुए उन किस्से कहानियों झूठी मनगढ़न्त बातों, गणों, हास्यकथाओं को गढ़ता, और हस्तान्तरित करता हुआ जो इस बिखरे हुए समाज के लोगों में एकता की भावना जगाती, उन्हें बन्धुत्व के सूत्र में बांधती और मजबूती प्रदान करती हैं। साउल के इस तरह सब कुछ छोड़ देने और ऐसा बन जाने - जिसके चलते वह बीस साल से अधिक समय से अमेसोनिया के जंगलों में अनवरत उलटफेरों और झंझावातों से जूझता और आधुनिकता और विकास के विचार मात्र के खिलाफ लड़ता-धुमन्तू चारण कथावाचकों की अदृश्य वंशावली का हिस्सा बन जाने का ख्याल मेरी स्मृति में बार बार लौटता है....और मेरा दिल तेजी से धड़कने लगता है जितना कभी भय या प्रेम के किसी क्षण में भी कभी नहीं धड़का। और लयोसा आत्मवाची में हदों के भीतर रहते हुए साउल में हदों के पार की छलांग लगा लेते हैं, जैसा कि सिर्फ एक लेखक कर सकता है

□□

जे-901, हार्ड बर्ड, निहा स्कॉटिश गार्डेन,
अहिंसाखण्ड, इन्दिरापुरम
गाजियाबाद, 201010
मो. 9871076587